f'k{kk esa uSfrd ewY; vkSj fgUnh lkfgR; dk ;ksxnku

Mk- fueZyk 'kekZ
ofj"B izoDrk fgUnh
,e-,y- ,.M tS-,u-dS- xYlZ dkWyst] lgkjuiqj] Òkjr

नीति (नी. क्तिन्) का अर्थ है– निर्देशन, आचरण, चाल–चलन, व्यवहार, कार्यक्रम, औचित्य, शालीनता। 'आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः।' [1]

नीति के अन्तर्गत सत्य, हित और परिणाम में सुख देने वाले तत्त्वों का समावेष किया जाता है। नीति में तद्धित का ठक् प्रत्यय लगने से नैतिक शब्द बना है जिसका अर्थ है– नीति विषयक अर्थात् नीति सम्बन्धी। नीति सम्बन्धी सभी बातों को नैतिकता में परिगणित किया जाता है।

नैतिक शब्द मुख्यतः कर्म एवं शील का विशेषण है। कर्म और शील के विषय में सत् और असत् का विवेचन ही नैतिकता का मुख्य प्रश्न है। नैतिक चेतना सामाजिक संस्कारों, मतों और व्यवस्थाओं के अन्तराल से सिद्ध होती है। नैतिक गुण प्राकृतिक न होते हुए भी ऐन्द्रिय अथवा मानस प्रत्यक्ष के विषयों पर आश्रित धर्म है। सामाजिक मान्यताएँ ही व्यक्तियों में संस्कार उत्पन्न करती हैं और इन संस्कारों के अनुरूप व्यक्ति अपने को नियन्त्रित करते हैं। सामाजिक निन्दा–प्रशंसा एवं कानूनी दण्ड का भय लागों में नियम मानने का संस्कार डालते हैं, जिसके अनुसार वे एक आचार व्यवस्था को अच्छी, अन्य को बुरी कहने लगते हैं। ये संस्कार व्यक्ति के मन में इतने गहरे होते हैं कि वे इन नियमों को अहेतुक–रूप से स्वतः सिद्धवत् मानते हैं।'' [2]

अतः व्यक्तिगत और सामाजिक उत्कर्ष की साधना ही नैतिकता है। यद्यपि मानवीय भावों में एक ओर राग, द्वेष, लोभ, मोह तथा हिंसा आदि दिखाई पड़ते हैं तो दूसरी ओर प्रेम, दया, करुणा, स्नेह, सहानुभूति, सेवा तथा अहिंसा आदि। व्यावहारिक स्तर पर दोनों का महत्त्व है क्योंकि दोनों ही समय–समय पर उपयोगी सिद्ध होते हैं, परन्तु आदर्श नैतिकता के स्तर पर प्रेम, दया, अहिंसा आदि गुणों की ही प्रतिष्ठा होती है। श्रेष्ठ गुण ही उच्च नैतिकता के आधार हैं। जीवन को आदर्श, उन्नत एवं श्रेष्ठ रूप देने वाले गुण नैतिक हैं और इसके विपरीत अनैतिक। मनुस्मृति में भी धर्म के जो दस लक्षण बताये गये हैं वे नैतिक मूल्यों में ही समाहित है।

धृति क्षमा दमो•स्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। [3]

इस दृष्टि से प्रेम, दया, दान, परोपकार, सदाचार, सत्संगति, निंदा–त्याग, सत्य, क्षमा, अहंकार–त्याग, क्रोध–विसर्जन, संयम और मौन आदि नैतिक गुण हैं।

जीवन को उत्कर्ष की ओर ले जाने के लिए अर्थात् उसे सही अर्थों में प्रतिगामी बनाने के लिये मूल्यों की आवष्यकता अनुभव की गई। जीवन को सम्यक एवं संयमित ढंग से चलाने के लिये विचारकों ने अनुभव किया कि जीवन के लिये कुछ मानदण्ड रहना चाहिये, उन्हीं के आधार पर मूल्यों की बात की जाने लगी और जीवन की आन्तरिक एवं बाह्य आवश्यकताओं के आधार पर कुछ कसौटियाँ बनाई गईं। ये कसौटियाँ, मान्यताएँ ही मूल्य हैं। मूल्य और कुछ नहीं, व्यक्ति द्वारा उच्चादर्शों की प्राप्ति का मानदण्ड ही हैं। जीवनोत्कर्ष के लिये मूल्य अनिवार्य हैं। सामाजिक संस्कृति के मूल्य समाज से सम्बन्ध हैं, जबकि मानवीय मूल्यों का सम्बन्ध मानवीय चेतना से होता है।

यदि हम नैतिक मूल्यों को देश के भावी नागरिकों को दे सकें तो मेरा अटूट विश्वास है हमारा समाज व देश कानून व्यवस्था, भ्रष्टाचार, धार्मिक कट्टरता, असहिष्णुता आदि की समस्याओं से मुक्त हो जायेगा। चारों ओर प्रेम, सहयोग व भाईचारे की गंगा बहेगी। यह सब शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव है। शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा सामाजिक तथ्यों का संचारण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को होता है। प्रारम्भ में तो व्यक्ति को सिखाया जाता है कि वह सामाजिक तथ्यों को अपने जीवन में उतारे और बाद में चलकर ये तथ्य अपने आप व्यक्ति के जीवन के अंग बन जाते हैं।'' [4] निश्चय ही शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करके उसे सम्पूर्ण समाज के अनुकूल बनाना है। इस हेतु नयी पीढ़ी के दृष्टिकोण में लचीलापन लाकर उन्हें अधिक सहनशील, ग्रहणशील और सृजनशील बनाने की आवष्यकता है ताकि वे आने वाली अनिश्चितताओं और आकस्मिकताओं का आत्म–विश्वास और कुशलता से सामना कर सकें।'' [5] श्री पार्थसारथी राजगोपालाचारी जी कहते हैं कि शिक्षा का अर्थ है अन्दर के सोये हुए ज्ञान को जगाना, ज्ञान देना नहीं। शिक्षा ऐसी प्रक्रिया है जिसमें आप दूसरे व्यक्ति को सीखने में सहायता प्रदान करते हैं। आप किसी को शिक्षित नहीं करते वरन् यह बताते हैं कि कैसे सीखा जाये।'' [6] उनके अनुसार शिक्षण प्रक्रिया के उस पहलू को हमें समझना है, जो उस श्वाँस की तरह है जो हमारे जीवन रहने की सीमा तक कभी नहीं रुकती।' [7] व्यक्ति के सम्यक विकास के लिये उसके ज्ञान तन्तुओं को प्रशिक्षित करने की प्रक्रिया का नाम शिक्षा है। शिक्षक और विद्यार्थी में पारस्परिक सहज स्नेहयुक्त सौहार्द और सद्विवेक ही शिक्षा की प्राणशक्ति हैं।

उक्त से स्पष्ट है कि हमारी शिक्षा नैतिक मूल्यों पर आधारित हो। तभी समाज व देश का कल्याण सम्भव है। नैतिक मूल्यों के विकास में हिन्दी साहित्य का अमिट योगदान है। इस संदर्भ में कबीरदास का नाम अविस्मरणीय है। कबीर के उपदेश व्यष्टि और समष्टि दोनों का मार्ग प्रशस्त करते हैं। उन्होंने न केवल व्यक्ति की उन्नति पर बल्कि समाज की उन्नति पर भी बल दिया। वे बहुजन हिताय' और बहुजन सुखाय' के लिये सदा प्रयत्नशील रहे।

कबीरदास ने वृक्ष एवं माली के दृष्टांत द्वारा धैर्य भाव का निरूपण करते हुए कहा है–
धीरै–धीरै रे मना धीरै सब कुछ होय।
माली सींचै केवरा ऋतु आये फल होय।। [8]

कबीर ने कुसंगति का त्याग और सत्संगति पर विशेष बल दिया है–
कबिरा संगत साधु की हरै और की व्याध।
संगत बुरी असाधु की आठौ पहर उपाध।। [9]

कबीर ने कथनी और करनी की एकरूपता पर भी विशेष बल दिया है।
कथनी कथी तो क्या भया, जौ करनी ना ठहराइ।
कालबूत के कोट ज्यौं, देखत ही ढहि जाइ।। [10]

कबीर की दृष्टि में आत्मश्लाघा और परनिन्दा दोनों ही त्याज्य हैं–
आपनपौ न सराहिए, और न कहिये रंक।
ना जाने किस बिरिख तलि कूड़ा होई करंक।। [11]

कबीर ने कहा है कि मनुष्य को काम, क्रोध और तृष्णा से दूर ही रहना चाहिये, नहीं तो व्यक्ति बिना जल ही डूब जाता है–
काम क्रोध तिसनां के मारे,
बूड़ि मुएहु बिन पानी। [12]
सत्य के साथ मधुर भाषण का उपदेश हमारे ऋषि–मुनि प्राचीन काल से ही करते आये हैं। कबीरदास ने सत्य के साथ मधुर भाषण सुख देने वाला तथा दूसरे पर प्रभाव डालने वाला माना है, साथ ही विचार पूर्वक बोलने पर बल दिया है–
अैसी बांनी बोलिए, मन का आपा खोइ।
अपनां तन सीतल करै, औरां कौं सुख होइ।। [13]
शबद सम्हारिके बोलिये, शबद के हाथ न पांव।
एक शबद औषधि बने, एक शबद बने घाव। [14]
कबीर ने सभी जीवों पर दया के साथ क्षमा को भी स्थान दिया है–
जहाँ दया तंह धर्म है, जहाँ लोभ तंह पाप।
जहाँ क्रोध तंह काल है, जहाँ खिमां तंह आप।। [15]
इस प्रकार कबीर ने समाज में नैतिक मूल्यों से युक्त उपदेश दिये हैं। इन नैतिक मूल्यों का शिक्षा में अत्यधिक महत्त्व है।

तुलसीदास ने भी नैतिक मूल्यों पर युक्ति–संगत प्रकाश डाला है। उन्होंने सामुदायिक कल्याण' की बात पर जोर दिया और सामाजिक चेतना का एक ऐसा पक्ष सामने रखा जिससे समाज के निर्बल पक्ष को सम्बल मिल सके–
परहित सरिस धरम नहीं भाई।
परपीड़ा सम नहीं अधमाई।। [16]
तुलसीदास जी समता, सरलता और परोपकारी वृत्तियों के धनी देखे जाते हैं। उनका मानना है कि नियम–नीति से कभी विचलित नहीं होना चाहिए–

सम,दम, नियम नीति नहिं डोलहिं।
परषु वचन कबहुँ नहिं बोलहिं।। [17]
मीठी बाणी का महत्त्व तुलसी की दृष्टि में इस प्रकार है–
तुलसी मीठे वचन से, सुख उपजत चहुँ ओर।
वसीकरण एक मंत्र है, तजि दे वचन कठोर।। [18]
तुलसीदास ने स्पष्ट किया है कि जो मनुष्य भय के कारण प्रिय बोलते हैं, वह सदैव अनर्थकारी होता है–
सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होई बेगिहीं नास।। [19]
तुलसीदास ने गुरु–भक्ति को सदाचार का अन्यतम अंग माना है। राज्याभिषेक के अवसर पर राम गुरु वशिष्ठ के आगमन पर अपना आसन त्याग कर, दरवाजे पर आकर स्वयं शीष झुकाकर उनका स्वागत करते हैं–
गुरु आगमन सुनत रघुनाथा।
द्वार आइ पद नायउ माथा।। [20]
तुलसी ने सत्य को मानव का आधारभूत धर्म माना है–
धरमु न दूसर सत्य समाना।
आगम निगम पुरान बखाना।। [21]
इन साहित्यकारों के अतिरिक्त अन्य साहित्यकारों ने भी जीवन में नैतिक मूल्यों का सारगर्भित प्रतिष्ठापन किया है, जैसे रहीम, संत रविदास, गुरू नानकदेव, दादूदयाल, सुन्दरदास आदि।

अब प्रश्न उठता है कि नैतिक मूल्यों का शिक्षा में कैसे संचरण हो जिससे समाज व देश का भला हो सके। इसका एक मात्र उत्तर है, शिक्षक द्वारा। यह सर्वमान्य है कि शिक्षक राष्ट्र निर्माता है। शिक्षक एक विलक्षण व्यक्तित्व है। वह समाज को जैसा चाहे बना सकता है। उसके प्रभाव की कोई सीमा नहीं है। "A teacher affects eternity, he can never tell where his influence stops" [22] इसके लिये शिक्षक शिक्षा का नैतिक मूल्यों पर आधारित होना आवश्यक है। भावी शिक्षकों को नैतिक मूल्यों से ओत–प्रोत कर दिया जाय जिससे वे स्वयं के जीवन को उसी प्रकार ढ़ाल सकें एवं अपने विद्यार्थियों को भी वैसा ही बना सकें। इस कार्य में इच्छा शक्ति व प्रतिबद्धता का होना अनिवार्य है। ऐसा तभी सम्भव है जब भावी शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वाले शिक्षक भी नैतिक मूल्यों को सच्चाई व ईमानदारी से अपने जीवन में व्यावहारिक रूप में अंगीकृत कर लें व उनके अनुसार ही आचरण करें। तभी वे भावी शिक्षकों को उसी प्रकार का बना सकेंगे। शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रम में नैतिक मूल्यों को भी स्थान मिले। यह प्रयास अवष्य ही समाज व देश हित में मील का पत्थर बनकर उभरेगा।
गुरु कुम्हार सिष कुंभ है, गढ़ गढ़ काढ़े खोट।
अन्तर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट ।। [23]

lanHk

1. आप्टे, वामन शिवराम, संस्कृत हिन्दी कोश, पृ0 550
2. पापडे, डॉ. गोविन्द चन्द्र, मूल्य मीमांसा, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, प्रथम सं. 1973 पृ0 155–156
3. मनुस्मृति, गीताप्रेस गोरखपुर 6/62
4. दोषी, शम्भूदयाल, दुर्खीम–समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ0 87
5. चौधरी, उमराव सिंह, सामाजिक परिवर्तन और शिक्षा, पृ05 (प्राक्कथन)
6. श्री पार्थसारथी राजगोपालाचारी जी, सहज मार्ग क्या है? पृ0 11–12 प्रकाशन समिति श्री रामचन्द्र मिशन, 68/11 स्टेनली रोड़, इलाहाबाद।
7. – वही – पृ0 10
8. डॉ. योगेश्वर, कबीर समग्र, अथ धीरज कौ अंग, साखी–2 हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन प्रा0लि0 पिशाचमोचन, वाराणसी सं0 1996
9. तिवारी, डॉ. पारसनाथ, कबीर ग्रंथावली, साध महिमा कौ अंग, राका प्रकाशन, इलाहाबाद सं0 10
10. – वही – करनी कथनी कौ अंग, साखी–4
11. – वही – निंदा कौ अंग, साखी – 8
12. – वही – पद 69/2
13. – वही – उपदेश चितावनी कौ अंग, साखी–75
14. – वही – उपदेश चितावनी कौ अंग
15. डॉ. योगेश्वर– कबीर समग्र, क्षमा कौ अंग, साखी–4
16. श्रीरामचरितमानस (उत्तराकाण्ड) गीताप्रेस, गोरखपुर
17. – वही –
18. – वही –
19. – वही – (सुन्दरकाण्ड) दोहा–37
20. – वही –
21. – वही –
22. Adams Henry, The Education of Henry Adams
23. डॉ. योगेश्वर, कबीर समग्र, गुरु कौ अंग

Mk- fueyk 'kekZ

f'k{kk एम.ए. (हिन्दी) 1982 मेरठ विश्व0, मेरठ
बी.एड. 1984 मेरठ विश्व0, मेरठ।
पी–एच.डी. (हिन्दी) 1992 मेरठ विश्व0, मेरठ
विषयः– भीष्म साहनी का कथा साहित्य–कथ्य और शिल्प
एम.ए. (संस्कृत) 1999 चौ. च.सिंह विश्व. मेरठ।
डी.लिट्, 2014 चौ.च.सिंह विश्व. मेरठ
विषयः कबीर साहित्य और सहजमार्गीय संत साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
सम्प्रतिः असि.प्रो. (हिन्दी) 2001 से .....
एम.एल.एण्ड जे.एन.के. गर्ल्स कॉलेज, सहारनपुर।
19 शोध पत्र राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में प्रकाशित
राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में 22 शोध पत्र प्रस्तुत
शोध निर्देशन 7 शोधार्थियों को पी–एच.डी. उपाधि प्राप्त, 2 कार्यरत